Level-1 (Age-9 to 12 years)

1. दर्शन पाठ (संस्कृत)
2. मेरा धाम
3. अमूल्य तत्व विचार
4. छहढाला पहली ढाल
5. बारह भावना (राजा राणा ..)
6. रे जीव तू अपना स्वरूप
7. मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ
8. सहज जीवन
9. प्रमुख शास्त्र जी मंगलाचरण
10. स्तुति (प्रभु पतित पावन ...)
11. दर्शन पाठ (कैसी सुन्दर जिन-प्रतिमा है ...)

Level-2 (Age 12 years and above)

1. मंगलाष्टक
2. महावीर वंदना
3. छहढाला पहली एवं दूसरी ढाल
4. भक्तामर स्त्रोत्र (संस्कृत) (कम से कम 12 छंद)
5. मुझे है स्वामी उस बल की दरकार
6. निर्ग्रन्थ भावना
7. अपूर्व अवसर
8. तत्वार्थ सूत्र (प्रथम अध्याय)
9. स्तुति (सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि...)
10. पूजन (केवल रवि किरणों ...)
11. दर्शन स्तुति (भटक-भटक भव की गलियों में ...)

दर्शन पाठ (संस्कृत)

दर्शनं देवदेवस्य दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं दर्शनं मोक्षसाधनम्।। 1।।
दर्शनेन जिनेन्द्राणां साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं छिद्रहस्ते यथोदकम्।। 2।।
वीतराग-मुखं दृष्ट्वा पद्मराग-समप्रभम्।
जन्म-जन्मकृतं पापं दर्शनेन विनश्यति।। 3।।
दर्शनं जिनसूर्यस्य संसारध्वान्तनाशनम्।
बोधनं चित्त-पद्मस्य समस्तार्थप्रकाशनम्।। 4।।

दर्शनं जिन-चन्द्रस्य सद्धर्मामृत-वर्षणम्।
जन्म-दाहविनाशाय वर्धनं सुख-वारिधेः।। 5।।

जीवादितत्त्वप्रतिपादकाय सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणाश्रयाय।
प्रशान्तरूपाय दिगम्बराय देवाधिदेवाय नमो जिनाय।।6।।

चिदानन्दैक-रूपाय जिनाय परमात्मने।
परमात्म-प्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।। 7।।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम।
तस्मात्कारुण्य-भावेन रक्ष रक्ष जिनेश्वर।। 8।।
नहि त्राता नहि त्राता नहि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो न भूतो न भविष्यति।। 9।।
जिनेभक्ति र्जिनेभक्ति र्जिनेभक्ति र्दिने-दिने।
सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु सदा मेऽस्तु भवे भवे।।10।।
जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवेच्चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि जिन-धर्मानुवासितः।। 11।।
जन्म-जन्मकृतं पापं जन्म-कोटिमुपार्जितम्।
जन्म-मृत्यु-जरा-रोगं हन्यते जिन-दर्शनात्।। 12।।

अद्याभवत्सफलता नयन-द्वयस्य,
देव! त्वदीय चरणाम्बुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे,

मेरा धाम

शुद्धातम है मेरा नाम,
मात्र जानना मेरा काम।
मुक्तिपुरी है मेरा धाम,[१]
मिलता जहाँ पूर्ण विश्राम।।

जहाँ भूख का नाम नहीं है,
जहाँ प्यास का नाम नहीं है।
खाँसी और जुखाम नहीं है,
आधि[२] व्याधि[३] का नाम नहीं है।।

सत्[४] शिव[५] सुन्दर मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम।
मात्र जानना मेरा काम।।१।।

स्वपर–भेद विज्ञान करेंगे,
निज आतम का ध्यान धरेंगे।
राग–द्वेष का त्याग करेंगे,
चिदानन्द[६] रस पान करेंगे।।

सब सुखदाता मेरा धाम,
शुद्धातम है मेरा नाम।
मात्र जानना मेरा काम ।।२।।

---

१. निवास, २. मानसिक रोग, ३. शारीरिक रोग,
४. सच्चा, ५. कल्याणकारी, ६. आत्मा का आनन्द।

अमूल्य तत्त्व विचार

(श्री युगलजी कृत)

(हरिगीतिका)

बहु पुण्य-पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे! भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला।।१।।
सुख-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव-मरण, प्रवाह में चकचूर है।।२।।
लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या? वृद्धिनय पर तोलिये।।३।।
संसार का बढ़ना अरे! नर देह की यह हार है।
नहिं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है।।४।।
निर्दोष सुख निर्दोष आनन्द, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
यह दिव्य अन्ततत्त्व जिससे, बन्धनों से मुक्त हो।।५।।
पर वस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे! पश्चात् जिसके दुख भरा।।६।।
मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा रूप क्या?
सम्बन्ध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूँ परिहार क्या।।७।।
इसका विचार विवेकपूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिकज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये।।८।।
किसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे! वह स्वानुभूति प्रसूत है।।९।।
तारो अरे! तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो, यह वच हृदय लख लीजिये।।१०।।

छहढाला प्रथम ढाल के लिए नीचे जाएँ

बारह भावना

(पं. भूधरदासजी कृत)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।१।।
दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखन हार।।२।।
दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।३।।
आप अकेलो अवतरे, मरे अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।४।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपनो कोय।
घर संपति पर प्रकट ये, पर हैं परिजन लोय।।५।।
दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह।।६।।
मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।७।।
सत्गुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कछु बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।।८।।
ज्ञान-दीप तप तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसैं नहीं, बैठे पूरब चोर।।
पंच महाव्रत संचरन, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार।।९।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।
तामें जीव अनादि तैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।१०।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहिं सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।११।।
जाँचे सुर तरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचै बिन चिन्तये, धर्म सकल सुख दैन।।१२।।

अपना स्वरूप

रे जीव ! तू अपना स्वरूप देख तो अहा।
दृग-ज्ञान-सुख-वीर्य का भण्डार है भरा।।टेक।।
नहिं जन्मता मरता नहीं, शाश्वत प्रभु कहा।
उत्पाद व्यय होते हुये भी ध्रौव्य ही रहा।।१।।
पर से नहीं लेता नहीं देता तनिक पर को।
निरपेक्ष है पर से स्वयं में पूर्ण ही अहा।।२।।
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं स्वामी नहीं पर का।
अत्यंताभाव रूप से ज्ञायक ही प्रभु सदा।।३।।
पर को नहीं मेरी कभी मुझको नहीं पर की।
जरूरत पड़े सब परिणमन स्वतंत्र ही अहा।।४।।
पर दृष्टि झूठी छोड़कर निज दृष्टि तू करे।
निज में ही मग्न होय तो आनन्द हो महा।।५।।

बस मुक्तिमार्ग है यही निज दृष्टि अनुभवन।
निज में ही होवे लीनता शिव पद स्वयं लहा।।६।।
आत्मन् कहूँ महिमा कहाँ तक आत्म भाव की।
जिससे बने परमात्मा शुद्धात्म वह कहा।।७।।

मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं

मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं,
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं ॥
मैं हूं अपने में स्वयं पूर्ण, पर की मुझमें कुछ गंध नहीं ,
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी, पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं ॥
मैं रंग राग से भिन्न भेद से, भी मैं भिन्न निराला हूं ,
मैं हूं अखंड चैतन्य पिण्ड, निज रस में रमने वाला हूं ॥
मैं ही मेरा कर्ता धर्ता, मुझमें पर का कुछ का काम नहीं ,
मैं मुझमें रमने वाला हूं, पर में मेरा विश्राम नहीं ॥
मैं शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध एक, पर परिणति से अप्रभावी हूं
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्व, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं ॥
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं, मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूं ॥

सहज जीवन

अहो! चैतन्य आनन्दमय, सहज जीवन हमारा है।
अनादि अनंत पर निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है।। टेक।।
हमारे में न कुछ पर का, हमारा भी नहीं पर में।
द्रव्य-दृष्टि हुई सच्ची, आज प्रत्यक्ष निहारा है।। 1।।
अनंतों शक्तियाँ उछलें, सहज सुख ज्ञानमय विलसें।
अहो! प्रभुता परम पावन, वीर्य का भी न पारा है।। 2।।
नहीं जन्मूँ नहीं मरता, नहीं घटता नहीं बढ़ता।
अगुरूलघुरूप ध्रुव ज्ञायक, सहज जीवन हमारा है।। 3।।
सहज ऐश्वर्यमय मुक्ति, अनंतों गुणमयी ऋद्धि।
विलसती नित्य ही सिद्धि, सहज जीवन हमारा है।। 4।।
किसी से कुछ नहीं लेना, किसी को कुछ नहीं देना।
अहो! निश्चिंत परमानन्दमय, जीवन हमारा है।। 5।।
ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रूप है मेरा।
परम निर्दोष समतामय, ज्ञान जीवन हमारा है।। 6।।
मुक्ति में व्यक्त है जैसा, यहाँ अव्यक्त है वैसा।
अबद्धस्पृष्ट-अनन्य, नियत जीवन हमारा है।। 7।।
सदा ही है न होता है, न जिसमें कुछ भी होता है।
अहो! उत्पाद-व्यय निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है।। 8।।
विनाशी बाह्य जीवन की, आज ममता तजी झूठी।
रहे चाहे अभी जाये, सहज जीवन हमारा है।। 9।।
नहीं परवाह अब जग की, नहीं है चाह शिवपद की।
अहो! परिपूर्ण निष्पृह ज्ञानमय, जीवन हमारा है।।10।।

मंगलाचरण

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्।

सर्वमङ्गलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम्।।

तत्वार्थ सूत्र जी

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये।।

श्री रत्नकरंड श्रावकाचार जी

नमः श्रीवर्धमानाय निर्धूतकलिलात्मने ।
सालोकानां त्रिलोकानां यद्विद्या दर्पणायते ॥१॥

समयसार जी

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवलीभणिदं।।

मोक्ष मार्ग प्रकाशक जी

मंगलमय मंगलकरण, वीतराग-विज्ञान।
नमौं ताहि जातैं भये, अरहंतादि महान।।१।।
करि मंगल करिहौं महा, ग्रंथकरनको काज।
जातैं मिलै समाज सब, पावै निजपद राज।।२।।

प्रभु पतित पावन विनती

प्रभु पतित पावन, मैं अपावन, चरन आयो सरन जी।
यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन-मरन जी।।
तुम ना पिछान्यो आन मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धिसेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी।।
भव विकट वन में करम वैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‌यो।
तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‌यो।।
धन घड़ी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग्य मेरो उदय आयो, दरश प्रभु को लख लयो।।
छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण जुत, कोटि रविछवि को हरैं।।
मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो।।
मैं हाथ जोड़ नवाय मस्तक, वीनऊँ तुव चरन जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन-तरन जी।।
जाचूँ नहीं सुरवास पुनि, नरराज परिजन साथ जी।
'बुध' जाचहुँ तुव भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी।।

मंगलाष्टक

(शार्दूलविक्रीडित)

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायकाः।
श्रीसिद्धान्तसुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयाराधकाः
पञ्चैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।१।।

श्रीमन्नम्र-सुरासुरेन्द्र-मुकुट- प्रद्योत-रत्नप्रभा
भास्वत्पाद-नखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पञ्चगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।२।।

सम्यग्दर्शन-बोध-वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ-जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम्।।३।।

नाभेयादि-जिनाधिपास्त्रिभुवनख्याताश्चतुर्विंशतिः,
श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश।
ये विष्णुप्रतिविष्णु-लाङ्गलधराः सप्तोत्तरा विंशतिः,
त्रैकाल्ये प्रथितास्त्रिषष्टिपुरुषाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।४।।
ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगता पंच ये,
ये चाष्टांगमहानिमित्तकुशला येऽष्टाविधाश्चारणाः।
पञ्चज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।५।।
कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।६।।
ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम्।।७।।
यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संपादितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पञ्च सततं कुर्वन्तु ते मंगलम्।।८।।
इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्यसंपत्प्रदम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थङ्कराणां मुखात्।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रियते व्यपायरहिता निर्वाणलक्ष्मीरपि।।९।।

महावीर-वन्दना

जो मोह माया मान मत्सर, मदन मर्दन वीर हैं।
जो विपुल विघ्नों बीच में भी, ध्यान धारण धीर हैं।।
जो तरण–तारण, भव–निवारण, भव–जलधि के तीर हैं।
वे वंदनीय जिनेश, तीर्थंकर स्वयं महावीर हैं ।।

जो राग–द्वेष विकार वर्जित, लीन आतम ध्यान में।
जिनके विराट् विशाल निर्मल, अचल केवलज्ञान में।।
युगपद् विशद सकलार्थ झलकें, ध्वनित हों व्याख्यान में।
वे वर्द्धमान महान जिन, विचरें हमारे ध्यान में।।

जिनका परम पावन चरित, जलनिधि समान अपार हैं।
जिनके गुणों के कथन में, गणधर न पावैं पार है।।
बस वीतराग–विज्ञान ही, जिनके कथन का सार है।
उन सर्वदर्शी सन्मती को, वंदना शत बार है।।

जिनके विमल उपदेश में, सबके उदय की बात है।
समभाव समताभाव जिनका, जगत में विख्यात है।।
जिसने बताया जगत को, प्रत्येक कण स्वाधीन है।
कर्त्ता न धर्त्ता कोई हैं, अणु–अणु स्वयं में लीन है।।

आतम बने परमातमा, हो शान्ति सारे देश में।
है देशना सर्वोदयी, महावीर के सन्देश में ।।

छहढाला

(पं. दौलतरामजी कृत)

मंगलाचरण

(सोरठा)

तीन भुवन में सार, वीतराग-विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं।।

पहली ढाल

(चौपाई)

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुखतैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार।।१।।
ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्याण।
मोह महामद पियौ अनादि, भूल आप को भरमत बादि।।२।।
तास भ्रमण की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनन्त निगोद मँझार, बीत्यो एकेन्द्रिय तन धार।।३।।
एक श्वास में अठ-दश बार, जन्म्यो-मर्‌यो भर्‌यो दुखभार।
निकसि भूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो।।४।।
दुर्लभ लहि ज्यौं चिंतामणी, त्यौं पर्याय लही त्रसतणी।
लट पिपील अलि आदि शरीर, धर-धर मर्‌यो सही बहु पीर।।५।।
कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन बिन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबल पशू हति खाये भूर।।६।।
कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अति दीन।
छेदन-भेदन भूख पियास, भार-वहन हिम-आतप त्रास।।७।।
बध-बन्धन आदिक दुःख घने, कोटि जीभतैं जात न भने।
अति संक्लेश भावतैं मर्‌यो घोर श्वभ्र-सागर में पर्‌यो।।८।।
तहाँ भूमि परसत दुःख इसो, बिच्छू सहस डसैं नहिं तिसो।
तहाँ राध-शोणित वाहिनी, कृमि-कुल कलित देह दाहिनी।।९।।

सेमर तरु दल जुत असिपत्र, असि ज्यौं देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।।१०।।

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिंधु-नीर तैं प्यास न जाय, तो पण एक न बूँद लहाय।।११।।

तीन लोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुःख बहु सागर लौं सहे, करम-जोग तैं नरगति लहै।।१२।।

जननी उदर बस्यो नव मास, अंग-सकुचतैं पायो त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवे ओर।।१३।।

बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरुणीरत-रह्यौ।
अर्द्धमृतक-सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो।।१४।।

कभी अकाम-निर्जरा करै, भवनत्रिक में सुरतन धरै।
विषयचाह-दावानल दह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो।।१५।।

जो विमानवासी हू थाय, सम्यग्दर्शन बिन दुख पाय।
तहँ तैं चय थावर-तन धरै, यों परिवर्तन पूरे करै।।१६।।

दूसरी ढाल

(पद्धरि छन्द)

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण-वश, भ्रमत भरत दुख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन, तिन संक्षेप कहूँ बखान।।१।।

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोग रूप, बिनमूरत चिन्मूरत अनूप।।२।।

पुद्गल-नभ-धर्म-अधर्म-काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान।।३।।

मैं सुखी-दुखी मैं रंक-राव, मेरो धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन।।४।।

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आपको नाश मान।
रागादि प्रकट ये दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन।।५।।

शुभ-अशुभ बंध के फल मँझार, रति-अरति करै निजपद बिसार।
आतमहित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपको कष्टदान।।६।।

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान।।७।।

इन जुत विषयनि में जो प्रवृत्त, ताको जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह।।८।।

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बर तैं सनेह।।९।।

धारैं कुलिंग लहि महत भाव, ते कुगुरु जन्म-जल-उपल नाव।
जे राग-द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन।।१०।।

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, शठ करत न तिन भव-भ्रमण छेव।
रागादि भावहिंसा समेत, दर्वित त्रस थावर मरण खेत।।११।।

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान।।१२।।

एकान्तवाद-दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि-रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास।।१३।।

जो ख्याति-लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविध-विध देह-दाह।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे जे करनी तन करन छीन।।१४।।

ते सब मिथ्याचारित्र त्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजाल-भ्रमण को देहु त्याग, अब 'दौलत' निज आतम सुपाग।।१५।।

भक्तामरस्तोत्रम्

(आचार्य मानतुंग कृत)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक्प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भवजले पततां जनानाम्।।१।।

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्।।२।।

बुद्धया विनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिन्दु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्।।३।।

वक्तुं गुणान्गुण-समुद्र शशाङ्क-कान्तान्
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्धया।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्।।४।।

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्म-वीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्।।५।।

अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम
त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैकहेतुः।।६।।

त्वत्संस्तवेन भव-सन्तति-सन्निबद्धं
पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ।।७ ।।
मत्त्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात् ।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः ।।८ ।।
आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं
त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि ।।९ ।।
नात्यद्भुतं भुवन-भूषण भूत-नाथ
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ।।१० ।।
दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः
क्षारं जलं जल-निधेरसितुं क इच्छेत् ।।११ ।।
यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं
निर्मापितस्त्रिभुवनैक-ललाम-भूत ।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ।।१२ ।।

मुझे है स्वामी उस बल की

मुझे है स्वामी, उस बल की दरकार।
जिस बल को पाकर के स्वामी आप हुये भव पार।। टेक।।
अड़ी खड़ी हों अमिट अड़चनें, आड़ी अटल अपार।
तो भी कभी निराश निगोड़ी, फटक न पावे द्वार।।1।।
सारा ही संसार करे यदि मुझसे दुर्व्यवहार।
हटे न तो भी सत्य मार्ग से, श्रद्धा किसी प्रकार।।2।।
धन वैभव की जिस आँधी से अस्थिर सब संसार।
उससे भी न जरा डिग पाऊँ, मन बन जाये पहार।।3।।
असफलता की चोटों से नहिं मन में पड़े दरार।
अधिक-अधिक उत्साहित होऊँ, मानूँ कभी न हार।।4।।
दुख दरिद्रता रोगादिक से, तन होवे बेकार।
तो भी कभी निरूद्यम हो नहिं, बैठूँ जगदाधार।।5।।
देवांगना खड़ी हों सन्मुख, करती अंग विकार।
सेठ सुदर्शन सा मैं होऊँ, लगे नहीं अतिचार।।6।।
जिसके आगे तन बल-धन बल, तृणवत् तुच्छ असार।
पाऊँ प्रभु आत्म बल ऐसा, महामहिम सुखकार।।7।।

निर्ग्रन्थ भावना

निर्ग्रन्थता की भावना अब हो सफल मेरी।
बीते अहो आराधना में हर घड़ी मेरी॥टेक.....॥

करके विराधन तत्त्व का, बहु दुःख उठाया।
आराधना का यह समय, अतिपुण्य से पाया॥
मिथ्या प्रपंचों में उलझ अब, क्यों करूँ देरी ? निर्ग्रन्थता...॥१॥

जब से लिया चैतन्य के, आनन्द का आस्वाद।
रमणीक भोग भी लगें, मुझको सभी निःस्वाद॥
ध्रुवधाम की ही ओर दौड़े, परिणति मेरी॥ निर्ग्रन्थता...॥२॥

पर में नहीं कर्त्तव्य मुझको, भासता कुछ भी।
अधिकार भी दीखे नहीं, जग में अरे कुछ भी॥
निज अंतरंग में ही दिखे, प्रभुता मुझे मेरी॥ निर्ग्रन्थता...॥३॥

क्षण-क्षण कषायों के प्रसंग, ही बनें जहाँ।
मोही जनों के संग में, सुख शान्ति हो कहाँ॥
जग-संगति से तो बढ़े, दुखमय भ्रमण फेरी॥ निर्ग्रन्थता...॥४॥

अब तो रहूँ निर्जन वनों में, गुरुजनों के संग।
शुद्धात्मा के ध्यानमय हो, परिणति असंग॥
निजभाव में ही लीन हो, मेटूँ जगत-फेरी॥ निर्ग्रन्थता...॥५॥

कोई अपेक्षा हो नहीं, निर्द्वन्द्व हो जीवन।
संतुष्ट निज में ही रहूँ, नित आप सम भगवन्॥
हो आप सम निर्मुक्त, मंगलमय दशा मेरी॥ निर्ग्रन्थता...॥६॥

अब तो सहा जाता नहीं, बोझा परिग्रह का।
विग्रह का मूल लगता है, विकल्प विग्रह का॥
स्वाधीन स्वाभाविक सहज हो, परिणति मेरी॥ निर्ग्रन्थता...॥७॥

अपूर्व-अवसर (श्रीमद राजचंद्र कृत)

अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आएगा
कब होऊँगा बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जब
संबंधों का बंधन तीक्ष्ण छेदकर
विचरूंगा कब महत्पुरुष के पंथ जब ॥१॥

उदासीन वृत्ति हो सब परभाव से
यह तन केवल संयम हेतु होय जब
किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं
तन में किंचित भी मूर्च्छा नहीं होय जब ॥२॥

दर्श मोह क्षय से उपजा है बोध जो
तन से भिन्न मात्र चेतन का ज्ञान जब
चरित्र मोह का क्षय जिससे हो जायेगा
वर्ते ऐसा निज स्वरूप का ध्यान जब ॥३॥

आत्म लीनता मन वच काया योग की
मुख्यरूप से रही देह पर्यन्त जब
भयकारी उपसर्ग परीषह हो महा
किन्तु न होवे स्थिरता का अंत जब ॥४॥

संयम ही के लिये योग की वृत्ति हो
निज आश्रय से जिन आज्ञा अनुसार जब
वह प्रवृत्ति भी क्षण-क्षण घटती जाएगी
होऊँ अंत में निज स्वरूप में लीन जब ॥५॥

पंच विषय में राग-द्वेष कुछ हो नहीं
अरु प्रमाद से होय न मन को क्षोभ जब
द्रव्य क्षेत्र अरु काल भाव प्रतिबन्ध बिन
वीतलोभ हो विचरूँ उदयाधीन जब ॥६॥

क्रोध भाव के प्रति हो क्रोध स्वभावता
मान भाव प्रति दीन भावमय मान जब
माया के प्रति माया साक्षी भाव की
लोभ भाव प्रति हो निर्लोभ समान जब ॥७॥

बहु उपसर्ग कर्त्ता के प्रति भी क्रोध नहीं
वन्दे चक्री तो भी मान न होय जब
देह जाय पर माया नहीं हो रोम में
लोभ नहीं हो प्रबल सिद्धि निदान जब ॥८॥

नग्नभाव मुंडभाव सहित अस्नानता
अदन्तधोवन आदि परम प्रसिद्ध जब
केश-रोम-नख आदि अंग श्रृंगार नहीं
द्रव्य-भाव संयममय निर्ग्रंथ सिद्ध जब ॥९॥

शत्रु-मित्र के प्रति वर्ते समदर्शिता
मान-अपमान में वर्ते वही स्वभाव जब
जन्म-मरण में हो नहीं न्यूनाधिकता
भव-मुक्ति में भी वर्ते समभाव जब ॥१०॥

एकाकी विचरूँगा जब श्मशान में
गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब
अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो
जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब ॥११॥

घोर तपश्चर्या में तन संताप नहीं
सरस अशन में भी हो नहीं प्रसन्न मन
रजकण या ऋद्धि वैमानिक देव की
सब में भासे पुद्गल एक स्वभाव जब ॥१२॥

ऐसे प्राप्त करूँ जय चारित्र मोह पर
पाऊँगा तब करण अपूरव भाव जब
क्षायिक श्रेणी पर होऊँ आरूढ़ जब
अनन्य चिंतन अतिशय शुद्ध स्वभाव जब ॥१३॥

मोह स्वयंभूरमण उदधि को तैर कर
प्राप्त करूँगा क्षीणमोह गुणस्थान जब
अंत समय में पूर्णरूप वीतराग हो
प्रगटाऊँ निज केवलज्ञान निधान जब ॥१४॥

चार घातिया कर्मों का क्षय हो जहाँ

हो भवतरु का बीज समूल विनाश जब
सकल ज्ञेय का ज्ञाता दृष्टा मात्र हो
कृतकृत्य प्रभु वीर्य अनंत प्रकाश जब ॥१५॥

चार अघाति कर्म जहाँ वर्ते प्रभो
जली जेवरीवत हो आकृति मात्र जब
जिनकी स्थिति आयु कर्म आधीन है
आयु पूर्ण हो तो मिटता तन पात्र जब ॥१६॥

मन वच काया अरु कर्मों की वर्गणा
छूटे जहाँ सकल पुद्गल सम्बन्ध जब
यही अयोगी गुणस्थान तक वर्तता
महाभाग्य सुखदायक पूर्ण अबन्ध जब ॥१७॥

इक परमाणु मात्र की न स्पर्शता
पूर्ण कलंक विहीन अडोल स्वरूप जब
शुद्ध निरंजन चेतन मूर्ति अनन्यमय
अगुरुलघु अमूर्त सहजपद रूप जब ॥१८॥

पूर्व प्रयोगादिक कारण के योग से
ऊर्ध्वगमन सिद्धालय में सुस्थित जब
सादि अनंत अनंत समाधि सुख में
अनंत दर्शन ज्ञान अनंत सहित जब ॥१९॥

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ
अनुभव गोचर मात्र रहा वह ज्ञान जब ॥२०॥

यही परम पद पाने को धर ध्यान जब
शक्तिविहीन अवस्था मनरथरूप जब
तो भी निश्चय 'राजचंद्र' के मन रहा
प्रभु आज्ञा से होऊँ वही स्वरूप जब ॥२१॥

तत्वार्थ सूत्र

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः ।।१ ।। तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् ।।२ ।। तन्निसर्गादधिगमाद्वा ।।३ ।। जीवाजीवास्रवबन्ध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम् ।।४ ।। नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ।।५ ।। प्रमाणनयैरधिगमः ।।६ ।। निर्देशस्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थितिविधानतः ।।७ ।। सत्संख्याक्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्वैश्च ।।८ ।। मति-श्रुतावधिमनःपर्यय केवलानि ज्ञानम् ।।९ ।। तत्प्रमाणे ।।१० ।। आद्ये परोक्षम् ।।११ ।। प्रत्यक्षमन्यत् ।।१२ ।। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम् ।।१३ ।। तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम् ।।१४ ।। अवग्रहेहावाय-धारणाः ।।१५ ।। बहु-बहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणाम् ।।१६ ।। अर्थस्य ।।१७ ।। व्यञ्जनस्यावग्रहः ।।१८ ।। न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम् ।।१९ ।। श्रुतं मति-पूर्वं द्व्यनेक-द्वादश-भेदम् ।।२० ।। भव प्रत्ययोऽवधिर्देव नारकाणाम् ।।२१ ।। क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम् ।।२२ ।। ऋजु-विपुलमती मनःपर्ययः ।।२३ ।। विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यांतद्विशेषः ।।२४ ।। विशुद्धि-क्षेत्र-स्वामि-विषयेभ्योऽवधि-मनः-पर्याययोः ।।२५ ।। मति-

श्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्व पर्यायेषु ।।२६ ।। रूपिष्ववधेः ।।२७ ।। तदनन्त-भागे मनःपर्ययस्य ।।२८ ।। सर्व-द्रव्यपर्यायेषु केवलस्य ।।२९ ।। एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ।।३० ।। मति-श्रुतावधयो विपर्ययश्च ।।३१ ।। सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ।।३२ ।। नैगम-संग्रहव्यवहारर्जु-सूत्र-शब्द-समभिरुढैवंभूता नयाः ।।३३ ।।

दर्शन-स्तुति

(पं. दौलतरामजी कृत)

(दोहा)

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस विहीन।।१।।

(पद्धरि छन्द)

जय वीतराग-विज्ञानपूर, जय मोहतिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख-वीरजमण्डित अपार।।२।।
जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि भागन वचजोगे वशाय, तुम धुनि ह्वै सुनि विभ्रम नशाय।।३।।
तुम गुण चिंतत निजपर विवेक, प्रकटै, विघटैं आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषणविमुक्त, सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त।।४।।
अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभ-अशुभविभाव-अभाव कीन, स्वाभाविकपरिणतिमय अछीन।।५।।
अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टयमय राजत गंभीर।
मुनिगणधरादि सेवत महंत, नव केवललब्धिरमा धरंत।।६।।
तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहैं सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारन को और न आप टारि।।७।।
यह लखि निजदुखगद हरणकाज, तुम ही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय।।८।।
मैं भ्रम्यो अपनपो विसरि आप, अपनाये विधि-फल पुण्य-पाप।
निज को पर को करता पिछान, पर में अनिष्टता इष्ट ठान।।९।।
आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन परिणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार।।१०।।
तुमको बिन जाने जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु नारक नर सुरगति मँझार, भव धर-धर मर्‌यो अनंत बार।।११।।

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शांत भयो मिटि सकल द्वन्द्व, चाख्यो स्वातमरस दुख निकंद।।१२।।
तातैं अब ऐसी करहु नाथ, बिछुरै न कभी तुव चरण साथ।
तुम गुणगण को नहिं छेव देव, जग तारन को तुव विरद एव।।१३।।
आतम के अहित विषय-कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाय।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ ज्यों निजाधीन।।१४।।
मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारन सु आप, शिव करहु हरहु मम मोहताप।।१५।।
शशि शांतिकरन तपहरन हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाय, त्यों तुम अनुभवतैं भव नशाय।।१६।।
त्रिभुवन तिहुँ काल मँझार कोय, नहिं तुम बिन निज सुखदाय होय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुख जलधि उतारन तुम जहाज।।१७।।

(दोहा)

तुम गुणगणमणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूँ त्रियोग सँभार।।१८।।

देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(श्री जुगलकिशोरजी 'युगल' कृत)

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अन्तर।
उस श्री जिन-वाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन।।
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम-आगम गुरु को, शत-शत वन्दन, शत-शत वन्दन।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र तिष्ठ, तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष-सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अबतक जान नहीं पाया।।
मैं भूल स्वयं निज वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक्-नीर लिये, मिथ्यामल धोने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु! अपने-अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ती है।।
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु! चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुन्द-धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किञ्चित् भी।
फिर भी अनुकूल लगें, उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही।।
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन, की मार्दव की खण्डित काया।
निज शाश्वत अक्षय-निधि पाने, अब दास चरण-रज में आया।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ, उसमें ऋजुता का लेश नहीं।।
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, किरिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो, अन्तर-कालुष धोती है।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही।।
युग-युग से इच्छासागर में, प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
चरणों में व्यंजन अर्पित कर, अनुपम रस पीने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मेरे चैतन्य सदन में प्रभु! चिर व्याप्त भयंकर अँधियारा।
श्रुत-दीप बुझा हे करुणानिधि! बीती नहिं कष्टों की कारा।।*
अत एव प्रभो! यह ज्ञान-प्रतीक, समर्पित करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर-दीप जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती जड़ केरी।।
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध-अनल से प्रभु, पर-गंध जलाने आया हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है।।
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति-रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षण भर निज-रस को पी चेतन, मिथ्या-मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द-अमृत पीता है।।
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहन्त अवस्था है।।
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु! अरहन्त अवस्था पाऊँगा।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(ताटंक)

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृग-तृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा।।

(बारह भावना)

झूठे जग के सपने सारे, झूठीं मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षण-भंगुर पल में मुरझायें।।
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृत-काया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या?
संसार महादुखसागर के, प्रभु दुखमय सुख-आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन-कामिनी प्रासादों में।।
मैं एकाकी एकत्व लिये, एकत्व लिये सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते।।
मेरे न हुए ये, मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज समरस पीनेवाला हूँ।
जिसके शृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़-काया से, इस चेतन का कैसा नाता।।
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस, वाणी और काया से, आस्रव का द्वार खुला रहता।।
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।
शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल।।
फिर तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियाँ टूट पड़ें।
सर्वांग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें।।
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजें क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बने फिर हमको क्या।।
जागे मम दुर्लभ बोधि प्रभो! दुर्नय-तम सत्वर टल जाये।
बस ज्ञाता-द्रष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जाये।।
चिर रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहें जग के साथी।।

(देव-स्तवन)

चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जाये।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तर्बल से खिल जाये।
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जायेगी इच्छा-ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला।।
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय सुख को ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा।।
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अत एव झुके तव चरणों में, जग के माणिक-मोती सारे।।

(शास्त्र-स्तवन)

स्याद्वादमयी तेरी वाणी, शुभनय के झरने झरते हैं।
उस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं।।

(गुरु-स्तवन)

हे गुरुवर! शाश्वत सुखदर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करनेवाला है।।
जब जग विषयों में रच-पच कर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा वह शिव के निष्कंटक, पथ में विषकंटक बोता हो।।
हो अर्द्ध-निशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो।।
करते तप शैल-नदी-तट पर, तरु-तल वर्षा की झड़ियों में।
समता-रस-पान किया करते, सुख-दुःख दोनों की घड़ियों में।।
अन्तर्ज्वाला हरती वाणी, मानो झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव-बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जायें अन्तर की कलियाँ।।
तुम-सा दानी क्या कोई हो, जग को दे दीं जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ।।

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रमाण, हे ज्ञान-दीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति-त्याग के मूर्तिमान, शिव-पथ-पंथी गुरुवर! प्रणाम।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत्)

दर्शन-स्तुति

भटक-भटक भव की गलियों में, दुख ही दुख मैंने पाया।
पा करके कुछ बाह्य वस्तुयें, निकट नहीं तेरे आया।।1।।
कोटि-कोटि सत्कृत्यों से ही, आ पहुँचा जिनमन्दिर में।
देख-देख प्रतिमा प्रभु तेरी, हर्ष उमड़ता अन्दर में।।2।।
आँखों का मिल गया मुझे फल, शान्तमूर्ति दर्शन करके।
रहूँ आपके चरणों में ही, काम-काज तज कर घर के।।3।।
दीर्घ-भ्रमण की लम्बी-चौड़ी, मेरी दुखद कहानी है।
त्रिभुवन नाथ जिनेश्वर तुमसे, नहीं कभी वह छानी है।।4।।
यों तो मैं अनादि से दुखिया, पर अब दुख विसराया है।
मानव भव में मिली तुम्हारे, पद-पंकज की छाया है।।5।।
तेरे दर्शन के प्रभाव से, मोह-ग्रन्थि सारी छूटी।
और मानसिक ममता साँकल, क्षण भर में मेरी टूटी।।6।।
वीतराग प्रभु के दर्शन से, पर-परिणति सत्वर भागी।
सम्प्रति कोई अहो अपरिमित, परमशान्ति मन में जागी।।7।।
तुच्छ इन्द्र-चक्री वैभव को, प्रभु तुम दर्शन के आगे।
अस्थिर जल बुद-बुद सम धन को, कौन मुमुक्षु अब माँगे ?।।8।।
सफल उसी का है नर जीवन, जो तुमको अपनाता है।
वीतराग सर्वज्ञ हितैषी, तू ही जग का त्राता है।।9।।
दिव्य आपके स्वच्छ ज्ञान में, लोकालोक झलकता है।
निजस्वरूप में रहे लीन अति, तू न उसे अपनाता है।।10।।
बिन आयुध ही देव आपने, महामोह क्षण में मारा।
त्रिभुवन विजयी कामदेव भी, नाथ आप से ही हारा।।11।।
यद्यपि राग-द्वेष इस जग में, नहीं किसी से तुम करते।
निन्दक जन पाते दुख अतिशय, भव्य भक्ति द्वारा तिरते।।12।।